इबोला वायरस का प्रकोप

वायरसों की पांच निकट सम्बंधित प्रजातियां हैं जिन्हें वैज्ञानिक *इबोला वायरस* कहते हैं। हाल ही में जिस इबोला वायरस ने तबाही मचाई है वह *ज़ाएर इबोलावायरस* है। इबोला फायलोवायरस परिवार का सदस्य है जिसका पता 1960 से पहले तक नहीं था। अधिकांश फायलोवायरस मनुष्यों में रक्तस्रावी जानलेवा बुखार पैदा करते हैं। इबोलावायरस की वजह से अब तक 5000 लोग जान गंवा चुके हैं।

फायलोवायरस पर अनुसंधान 2001 में एन्थ्रेक्स के प्रकोप के बाद शुरू हुआ था। खोजबीन से पता चला कि हमारा ज्ञान काफी अधूरा है। वैज्ञानिक यह जानने की कोशिश कर रहे हैं कि ये वायरस किन जंतुओं में वास करते हैं और कैसे ये जंतुओं से मनुष्यों तक पहुंचते हैं और आजकल ये मनुष्यों पर इतना अधिक हमला क्यों कर रहे हैं। पिछले 21 में से 19 सालों में इनका हमला हुआ है और इस साल में तीन बार। इन सवालों के जवाब खोजना मुश्किल है क्योंकि प्राकृतिक रूप से इनका प्रकोप कब होगा पता नहीं होता और प्रयोगशालाओं में इनके अध्ययन के लिए उच्च स्तर की सुरक्षा की ज़रूरत होती है।

इतना तो स्पष्ट है कि यदि इस वायरस के फैलाव को रोकना है तो हमें इस वायरस के जीव विज्ञान को समझना होगा, इसके संक्रमण के लक्षणों और महामारी के पैटर्न को समझना होगा। यहां प्रस्तुत है इबोला वायरस के बारे में कुछ सवालों के जवाब।

फायलोवायरस कहां से आए?

जुलाई 2007 में युगांडा की एक गुफा में सोने व सीसे की खोज कर रहा एक खनिक मारबर्ग वायरस से संक्रमित हुआ था। इसके बाद गुफा को बंद कर दिया गया और यूएस सेंटर फॉर डिसीज़ कंट्रोल एंड प्रिवेंशन की एक टीम इस पर शोध करने वहां पहुंची। उन्हें आशा थी कि वहां कई दशकों पुराने इस सवाल का जवाब मिलेगा कि कौन-सा जंतु फायलोवायरस का प्राकृतिक वास है। 1967 से ही यह सवाल रहा है जब पहला फायलोवायरस (मारबर्ग वायरस) खोजा गया था जिसने प्रयोगशाला में उन कर्मियों को संक्रमित किया था जो आयातित बंदरों पर काम कर रहे थे। फायलोवायरस से संक्रमित बंदरों, मनुष्यों और अन्य वानरों की ऊंची मृत्यु दर से स्पष्ट था कि प्रायमेट्स इस वायरस के कुदरती मेज़बान नहीं हैं। क्योंकि यदि वायरस अपने मेज़बान को मार देता है तो इसका प्रसार रुक जाता है। ऐसे संकेत मिले थे कि शायद चमगादड़ इस वायरस के भंडार हों। इस बात को सिद्ध करने के लिए ज़रूरी था कि संक्रमित चमगादड़ मिल जाए।

शोधकर्ताओं ने उस गुफा से 1300 चमगादड़ों को लेकर उनके रक्त में मारबर्ग वायरस की खोज की। शोधकर्ताओं ने पांच इजिप्शियन फलभक्षी चमगादड़ों में से मारबर्ग वायरस प्राप्त किया जबकि इनमें से किसी में भी इस बीमारी के लक्षण नहीं पाए गए थे। शोधकर्ताओं की टीम को पास की एक गुफा के चमगादड़ों में भी मारबर्ग वायरस मिला।

यह बहुत साफ नहीं है कि कैसे यह वायरस चमगादड़ से मनुष्य में पहुंचता है। लेकिन सबसे ज़्यादा संभावना यही है कि शरीर के तरल पदार्थों के साथ आता है। प्रयोगशाला में पाया गया कि मारबर्ग वायरस से संक्रमित चमगादड़ों के मुंह में यह वायरस पाया जाता है जो उनके द्वारा किसी भी फल को खाने से उस फल तक पहुंच जाता है। यह फल कोई और जंतु खाए तो वायरस उसमें पहुंच जाएगा।

अन्य फायलोवायरसों के मेज़बान की पहचान बहुत महत्वपूर्ण होगी क्योंकि जब तक हम वायरस के वाहक को नहीं पहचानते तब तक उस प्रजाति से अपने संपर्क की सीमा तय करना मुश्किल है।

वैज्ञानिकों का संदेह यही है कि चमगादड़ ही इबोलावायरस के भी प्राकृतिक मेज़बान हैं। सन 1967 में जब सबसे पहला ज्ञात इबोला संक्रमण फैला था तब सबसे पहले सूडान के कारखाने में 6 लोग इससे प्रभावित हुए थे और यह कारखाना चमगादड़ों का घर था। उसके बाद शोधकर्ताओं ने चमगादड़ों के खून से इबोलावायरस के खिलाफ एंटीबाडीज़ प्राप्त कर ली हैं और साथ ही वायरस के जेनेटिक मटेरियल

के छोटे-छोटे टुकड़े भी प्राप्त किए हैं। लेकिन यह सिद्ध करना बहुत मुश्किल साबित हो रहा है कि चमगादड़ ही इनके वाहक हैं। आज तक किसी जंगली चमगादड़ से ऐसा संक्रामक इबोला वायरस प्राप्त नहीं हुआ है। इबोलावायरस का प्रकोप कई स्थानों पर हुआ है लेकिन कभी-कभार ही ऐसे स्थानों पर हुआ है जहां मनुष्य या दूसरे जानवर चमगादड़ के संपर्क में आते हों। एक समस्या यह भी है कि फिलहाल इबोलावायरस के हमलों के संदर्भ में पूरा ज़ोर उसे संभालने पर होता है, न कि उसका स्रोत पता लगाने पर।

फायलोवायरस कैसे इतना फैल गया?

सन 2008 में यह बात पता लगी कि फायलोवायरस केवल चमगादड़ों और प्रायमेट्स में ही नहीं पाया जाता। यह बात तब स्पष्ट हुई जब फिलिपीन्स के अधिकरियों ने सूअरों में इस बीमारी के फैलने की बात कही थी। देखा गया कि सूअर रेस्टन इबोलावायरस से संक्रमित थे। यह वही प्रजाति है जो 1989 में फिलिपीन्स से यूएस में लाए गए बंदरों में पाई गई थी। इससे पहले किसी भी पालतू पशु में यह वायरस नहीं मिला था। और इसके बाद सन 2012 में चीन में भी सूअरों में यह वायरस पाया गया था। मगर यह रेस्टन वायरस मनुष्यों के लिए निरापद था। जो लोग इन सूअर फार्मों में काम करते थे उनके शरीर में इस वायरस के खिलाफ एंटीबॉडीज़ मिली थी (यानी वायरस उनके शरीर में पहुंचा था) लेकिन कोई बीमार नहीं हुआ था।

सन 2011 में वैज्ञानिकों ने इस बात की पुष्टि की कि सूअर भी ज़ाएर इबोलावायरस से संक्रमित हो सकते हैं। यानी सूअर एक साथ कई फायलोवायरस से संक्रमित हो सकते हैं जिसकी वजह से इन वायरसों के बीच जेनेटिक पदार्थ का आदान-प्रदान हो सकता है और नए रूप उभर सकते हैं। सवाल यह है कि क्या हमें रेस्टन वायरस की चिंता करनी चाहिए। यह मनुष्य में रोग पैदा नहीं करता मगर संभव है कि यह बदल जाए।

वैज्ञानिक अलग-अलग प्रकार के फायलोवायरस और उनकी भौगोलिक पहुंच को समझने की शुरुआत ही कर रहे हैं। ज्ञात फायलोवायरसों की लिस्ट में तो हाल ही में इज़ाफा हुआ है। पांचवा इबोलावायरस (*बंडीबुग्यो इबोलावायरस*) युगांडा में सन 2007 में खोजा गया था। और लोविउ वायरस सन 2011 में स्पेन में मरे हुए चमगादड़ों में पहचाना गया था। फायलोवायरस के और भी कई सदस्य खोजे जाने की संभावना है। यह वायरस बहुत सामान्य है और शायद काफी समय से हमारे आसपास रहा है। यह भी हो सकता है कि जानवरों से मनुष्य में इसके आने के बारे में वैज्ञानिकों को कभी-कभार ही पता चलता हो। अब शोधकर्ता यह समझने की कोशिश कर रहे हैं कि ये वायरस कितनी ज़्यादा बार जानवरों से मनुष्यों में कूदते हैं और ऐसा कब करते हैं, और कितनी बार बीमारी का कारण बनते हैं। मसलन, 2010 में गैबन के कुछ इलाकों में 20 प्रतिशत से ज़्यादा लोगों के रक्त में ज़ाएर इबोलावायरस के खिलाफ एंटीबॉडीज़ पाईं गईं थी। इससे पता चलता है कि अतीत में वे लोग इस वायरस के संपर्क में आए थे लेकिन बीमार नहीं हुए थे। कुछ शोधकर्ताओं का कहना है कि इन जानकारियों को सावधानीपूर्वक देखने की ज़रूरत है क्योंकि संभव है कि जो एंटीबॉडीज़ मिली हैं वे इबोला जैसे किसी अन्य वायरस के खिलाफ हों।

हाल में फैले ज़ाएर इबोलावायरस को लेकर एक सवाल है कि यह किस तरह बदल रहा है। इसके तेज़ी से फैलाव से संकेत मिलता है कि यह पहले की किस्म से कुछ अलग हो सकता है। शायद यह एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति में ज़्यादा आसानी से फैलने में सक्षम हो गया है। वैसे अभी तक उपलब्ध जानकारी से ऐसा कोई संकेत नहीं मिलता है किंतु इस बात की छानबीन ज़रूरी है। कुछ वैज्ञानिक ज़रूर यह आशंका व्यक्त कर रहे हैं कि हो सकता है कि यह वायरस हवा के साथ फैलने में सक्षम हो जाए। जेनेटिक विश्लेषण से पता चलता है कि ज़ाएर इबोलावायरस में बहुत तेज़ी से म्यूटेशन होते हैं। लेकिन अभी तक यह पता नहीं चला है कि म्यूटेशन की वजह से वायरस की प्रकृति में कोई विशेष परिवर्तन हुआ हो। इस वायरस के अधिक फैलाव का कारण यही माना जा रहा है कि यह अफ्रीका के एक ऐसे क्षेत्र में फैला जहां के लोग इस पर नियंत्रण करना नहीं जानते थे जिसके कारण यह शहरी क्षेत्रों में पहुंच गया।

क्या हम इबोला को अपना सबसे खराब दुश्मन बना

रहे हैं?

सितंबर में रोग प्रसार विशेषज्ञों द्वारा एक मानचित्र प्रकाशित किया गया था जिसमें अफ्रीका में इबोला के प्रकोप के स्थानों के साथ उन तीन चमगादड़ प्रजातियों को भी रखा गया था जो इस वायरस की वाहक मानी जा रही हैं। उन्होंने अफ्रीका के ग्रामीण और शहरी जनसंख्या परिवर्तन और गतिशीलता को भी इस मानचित्र पर दर्शाया था - मसलन यह देखा गया था कि किस देश में ग्रामीण व शहरी आबादी का अनुपात क्या है। विशेषज्ञ दल यह भविष्यवाणी करना चाहता था कि आने वाले दिनों में कहां पर वायरस के हमले का खतरा अधिक है।

उक्त विश्लेषण के आधार पर विशेषज्ञों का मत है कि इस साल से पहले तक इबोलावायरस के एक हमले को छोड़कर शेष सबका स्रोत मध्य अफ्रीका में चिंहित किया जा सका है। ज़ाएर इबोलावायरस को पश्चिमी अफ्रीका में पहले कभी नहीं देखा गया। लेकिन हो सकता है कि यह वहां मौजूद था। टीम का निष्कर्ष है कि इबोला के प्रकोप से सर्वाधिक ग्रस्त तीन देश - सिएरा लिओन, गिनी और लाइबेरिया में आगे भी प्रकोप का खतरा सर्वाधिक है क्योंकि इन देशों में लोग जहां बसे हैं वहां चमगादड़ों की संख्या भी अधिक है। टीम के मुताबिक इबोलावायरस के फैलने की सबसे ज़्यादा संभावना 22 अफ्रीकी देशों में हैं जहां 2.2 करोड़ लोग इसकी चपेट में आ सकते हैं।

अध्ययन से यह भी समझ में आने लगा है कि क्यों फायलोवायरस का प्रकोप बढ़ रहा है। दरअसल जिन देशों में लोग इस वायरस के वाहक हो सकते हैं उनकी जनसंख्या तिगुनी हो चुकी है। इसके अलावा हवाई यातायात में भी काफी वृद्धि हुई है। यानी वायरस हम तक नहीं आ रहा है बल्कि हम ही उस तक पहुंच रहे हैं और फिर उसे दुनिया भर में फैलने में मदद कर रहे हैं।

इबोला इतना घातक क्यों है?

इबोलावायरस सबसे ज़्यादा जानलेवा वायरसों में से एक है। हाल के प्रकोप में लगभग 60-70 प्रतिशत संक्रमित लोगों की जानें गई हैं। पहले की महामारियों में यह आंकड़ा 90 प्रतिशत था। इबोला व अन्य फायलोवायरस जानलेवा होते हैं क्योंकि ये शरीर के प्रतिरक्षा तंत्र का इस्तेमाल उसी के खिलाफ करते हैं।

आम तौर पर जब वायरस शरीर पर हमला करते हैं तो अविशिष्ट प्रतिरक्षा तंत्र को उकसाते हैं। जिसके कारण सूजन और संक्रमण से लड़ने वाली अन्य प्रक्रियाएं शुरू हो जाती हैं। मगर इबोलावायरस अविशिष्ट प्रतिरक्षा कोशिकाओं को संक्रमित और अपंग कर देता है जिसकी वजह से प्रतिरक्षा की प्रथम पंक्ति नाकाम हो जाती है। ये मरती हुई कोशिकाएं रसायनों का स्राव शुरू करवा देती हैं। इसके कारण एंटीबॉडीज़ का निर्माण करने वाली कोशिकाएं मरने लगती हैं।

अन्य घातक वायरस भी इस तरह कोशिकाओं की मृत्यु शुरू करते हैं मगर फायलोवायरस कई ऊतकों को प्रभावित करते हैं। प्रतिरक्षा तंत्र के अलावा इबोलावायरस प्लीहा और गुर्दों पर आक्रमण करते हैं और कोशिकाओं को नष्ट करते हैं। ये कोशिकाएं शरीर का रासायनिक संतुलन रखने में और खून का थक्का बनाने वाले प्रोटीन बनाने में मदद करती हैं। और तो और, इबोला वायरस लीवर, फेफड़ों, गुर्दों व अन्य अंगों को प्रभावित करता है। इसकी वजह से रक्त वाहिनियों में से खून रिसने लगता है और यह स्थिति जानलेवा हो सकती है।

यदि वैज्ञानिक यह समझ पाएं कि संक्रमण से बचे हुए लोगों का प्रतिरक्षा तंत्र वायरस से कैसे लड़ पाया तो इसके ज़रिए टीका बनाया जा सकता है। शोधकर्ताओं ने पाया कि इबोला संक्रमण से जीवित बचे लोगों में इसके खिलाफ एंटीबॉडीज़ बनाने वाली कोशिका मृत्यु को रोका जा सका और संक्रमण के दौरान अपनी प्रतिरक्षा कोशिकाओं को सुरक्षित रखा जा सका। लेकिन वे क्यों कर ऐसा कर सके और दूसरे नहीं कर सके? यह एक राज़ ही बना हुआ है।

सही इलाज से जान बचने की संभावना तो बढ़ जाती है। वर्तमान इबोला प्रकोप में जिन पीड़ितों का इलाज विकसित देशों में हुआ उनके जीवित रहने की संभावना ज़्यादा रही बजाय अफ्रीका में इलाज पाए पीड़ितों के। फायलोवायरस का कोई विशिष्ट इलाज तो नहीं है लेकिन डॉक्टर बारीकी से निगरानी करके रक्त के रासायनिक संगठन और प्रोटीन

संतुलन को बनाए रखकर अंगों को विफल होने से बचा सकते हैं। अर्थात यदि सही समय पर बेहतर स्वास्थ्य देखभाल मिले तो पीड़ित बच सकता है।

अफसोस की बात है कि जहां सबसे ज़्यादा लोग इबोला संक्रमण से पीड़ित हैं वहां इस तरह की देखभाल नहीं मिल पा रही है। उदाहरण के लिए, इंट्रावीनस तरल देने की बजाय ओआरएस का ही इस्तेमाल किया गया है। यह डर था कि इंट्रावीनस सुई लगाते समय कहीं स्वास्थ्यकर्मी संक्रमित न हो जाएं।

क्या वायरस को रोका सकता है?

पहले दर्ज़नों बार फैले फायलोवायरस के प्रकोप को सामान्य बुनियादी औज़ारों की मदद से रोका गया था - पीड़ितों को अलग-थलग रखना और उनका उपचार करना, और उनके संपर्क में आने वालों पर निगरानी रखना। नाइजीरिया और सेनेगल में इबोला को रोकने में इसी तरीके का उपयोग किया गया था। लेकिन पूरे पश्चिमी अफ्रीका में सार्वजनिक स्वास्थ्य की कार्रवाई शुरू से ही अपर्याप्त रहने की वजह से यह इतना अधिक फैला।

कुछ रोग प्रसार वैज्ञानिकों के मुताबिक जनवरी 2015 तक इसके और ज़्यादा फैलने की संभावना है। कुछ विशेषज्ञों का कहना है कि इसके लिए कुछ नई योजना बनाने की ज़रूरत है। मदद-एजेंसियों और गैर-मुनाफा संगठनों ने इस पर काम शुरू भी कर दिया है। सिएरा लिओन में संक्रमित व्यक्तियों को परिवार से अलग आइसोलेशन सेंटरों में रखा जाता है जहां पर उपचार की उतनी अच्छी व्यवस्था नहीं है। लेकिन पीड़ितों की संख्या इतनी ज़्यादा है कि सभी क्लीनिक पूरे भर गए हैं और यदि उन्हें केंद्रों में नहीं ले जाया गया तो मरीज़ कहीं और जाएंगे जिसकी वजह से बीमारी और ज़्यादा फैलेगी।

इस महामारी में दूसरा कदम रहा है प्रायोगिक उपचार का इस्तेमाल और इबोला वायरस को निशाना बनाने के लिए टीके का विकास। सबसे ज़्यादा ध्यान ज़ेडमैप ZMapp पर है। इसके परीक्षण जारी हैं।

अलबत्ता चाहे ये उपचार सफल साबित हों, तो भी चुनौती खत्म नहीं होती। अभी तक जो उत्पाद तैयार हुए हैं वे सब ज़ाएर इबोलावायरस के खिलाफ हैं। मगर यह ज़रूरी नहीं कि वे सारे फायलोवायरसों के खिलाफ कारगर साबित होंगे। लिहाज़ा, एंटीबाडीज़ के ऐसे सम्मिश्रण पर शोध चल रहा है जो कई फायलोवायरस के खिलाफ कारगर रहें। शोधकर्ताओं को आशा है कि एक दिन वे मल्टीपल फायलोवायरस उपचार बना पाएंगें और यह दवा लक्षण प्रकट होते ही काम करना शुरू कर देगी बजाय यह पता लगाकर समय बर्बाद करने में कि किसी मामले में कौन-सा वायरस ज़िम्मेदार है। ***(स्रोत फीचर्स)***